उदासीनाचार्य भगवान श्री चन्द्रबाबा का प्रसंग

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

यह प्राय: १३-१४ वर्ष पूर्व की घटना है। अखण्ड महापीठ में एक पंजाबी साधुबाबा (ग्वालियर बाबा) आए थे। वे कभी-कभी आश्रम में आते और कुछ दिन वहीं निवास करते थे। एकदिन उन्हीं साधुबाबा ने मुझे अति प्राचीन एक महात्मा की छवि दिखाकर कहा कि यह प्रतिकृति लगभग ५० वर्ष पुरातन एक पुस्तक के पृष्ठों से उन्होंने संग्रह की थी; इस छवि का पृष्ठ अत्यंत पुराना होने के कारण अब यह छवि नष्ट होती जा रही है। उन्होंने उस तस्वीर को ठीक से चित्रित करवाने के लिए अनेक स्थानों में कुशल अंकन शिल्पियों को दिया था। किन्तु कोई भी हुबहु उसे चित्रित न कर सका। अत: अंत में साधुबाबा ने मुझसे कहा कि यदि मेरा कोई परिचित चित्रकार है तो उसे देकर इस छवि को ठीक से अंकित करवाया जा सकता है। साधुबाबा द्वारा मुझे वह छवि प्रदान करने पर मैंने देखा कि उस छवि के नीचे अंकित है, 'जगद्गुरु भगवान श्रीचन्द्रजी महाराज'। उस तस्वीर में मैंने एक अनुपम दिव्य महात्मा का रूप देखा था। तत्पश्चात् इन महात्मा के संबंध में बहुत चर्चा होने पर मैं जान पाई कि वे उदासी सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता, श्री गुरुनानक देव के पुत्र 'श्री चन्द्र' थे। यह सुनने पर मन प्राण श्रद्धा से भर उठा। तब मैंने साधुबाबा से कहा, 'बाबा, यदि आप भरोसा कर मुझे अनुमति देते हैं तो मैं इस छवि को इसी समय ठीक करके दे सकती हूँ।'' साधुबाबा ने कहा, ''अच्छा माई, आप बना दीजिए।'' तब प्राय: संध्या हो गई थी। मैं उस अत्यंत जराजीर्ण तस्वीर को लेकर अपने कक्ष में आ गई एवं 'भगवत् कार्य शुभस्य शीघ्रम्' मन में यह भाव लेकर कार्य करने बैठ गई। छवि की रूपरेखा प्राय: अस्पष्ट सी थी। यह देखकर मैंने अपनी काली स्याही वाली कलम लेकर 'जय बाबाजी महाराज' कहकर महावतार बाबा को स्मरण कर छवि ठीक करनी आरंभ कर दी। जब चित्र अंकित करना शुरु किया तो हठात् लक्ष्य किया कि कलम के निब के ऊपरी नुकीले भाग पर एक श्वेतशुभ्र ज्योतिर्बिन्दु कलम के साथ-साथ छवि की रूपरेखा पकड़कर चल रहा था। यह देखकर भी मैं विचलित नहीं हुई कारण इस प्रकार के ज्योतिर्बिन्दु मेरे द्वारा पुस्तक लेखन के समय भी कलम के साथ-साथ चलते रहते हैं, ऐसा देखा है। अतएव इस विषय में मेरी अभिज्ञता पहले से ही हो चुकी थी कि वह गुरु महात्मागणों की कृपा, उनका आशीर्वाद है। प्राय: अटल कुम्भक अवस्था में छवि पूर्ण होने लगी एवं क्रमश: महात्मा की छवि स्पष्ट होकर प्रस्फुटित हो उठी। कलम इस प्रकार चलायी जा रही थी कि पृष्ठ पर कलम की निब स्पर्श ना करे; अर्थात् खूब ही हलके हाथ से कलम चलाई गयी। सब कुछ ठीक कर प्राय: एक-दो घण्टे पश्चात् साधुबाबा के पास जाकर वह दिखाने पर साधुबाबा विस्मित् हो गए! छवि की फोटो खींचकर उसकी अनेक प्रति छपवाने के लिए उन्होंने प्रकाश (वर्तमान में हमारे स्वामी संवेदानन्दजी) से कहा। मैंने साधुबाबा से कहा, ''गुरुमहाराजाओं के प्रत्यक्ष आशीष प्राप्ति से यह कार्य सम्पन्न हुआ है इसलिए निश्चय ही श्रीचन्द्रबाबा भी प्रसन्न होंगे एवं आपको दर्शन देंगे। मैंने अपने विश्वास और भक्तिपर निर्भर होकर साधुबाबा को एक सामान्य बात कही, किन्तु मात्र २४ घण्टे के मध्य ही वह सत्य हो जाएगी यह मैं नहीं जानती थी।

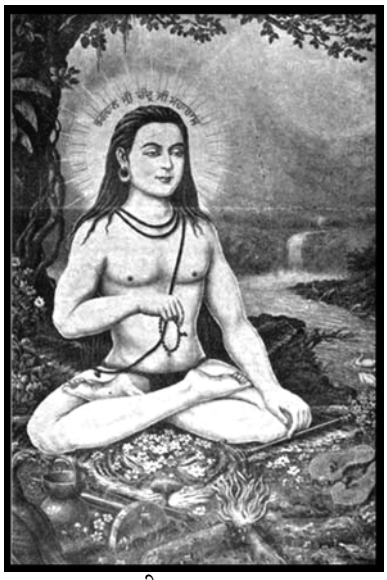

श्री चन्द्रबाबा

दूसरे दिन दोपहर में साधुबाबा को भोजन कराने पर साधुबाबा ने मुझसे कहा, ''माई, विगत रात्रि में एक अत्यद्भुत दिव्य स्वप्न का दर्शन हुआ है। देखा कि मैं प्रयाग के कुंभमेला में गया हूँ; प्राय: अनेक वर्ष पहले का प्रयाग देखा। वहाँ एक बड़े वटवृक्ष के तले एक ज्योतिर्मय महात्मा बैठे हुए है और बहुत से मनुष्य उन्हें घेरे हुए है। वे सत्प्रसंग

सुना रहे थे; उन महात्मा का गात्रवर्ण गौर एवं मस्तक के केश सुनहले थे। सोने की जटाएँ उनके दोनों कंधो पर होती हुई लटक रही थी । उनके समीप अग्रसर होकर उनको प्रणाम करने पर उन्होंने मुझे प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया। पार्श्व से न जाने किसने मुझसे कहा, ये ही भगवान श्रीचन्द्र महाराज साक्षात् महर्षि मार्कण्डेय है। यह कहकर साधुबाबा चुपचाप भोजन करने लगे।

साधुबाबा की बातें सुनकर अन्तर में अपार अनाबिल आनन्द के हिल्लोल का अनुभव किया। मार्कण्डेय पुराण के प्रसिद्ध ऋषि हुए 'मार्कण्डेय अथवा मार्कण्ड'। उनकी महिमा त्रिजगत्-व्यापी है। यही कारण है कि श्रीचन्द्रबाबा अवतारकल्प महात्मा है। होंगे भी क्यों नहीं भगवत्वेत्ता महात्मा श्रीगुरुनानक देव के पुत्ररूप में उनके ही अनुरोध पर संभवतया वही पुराण प्रसिद्ध महान ऋषि त्याग-योग की महिमा और वैराग्य-उदासीन धर्ममार्ग प्रचार करने के लिए पुनः आविर्भूत हुए थे। 'उदासीन' शब्द का अर्थ है आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत चेतना सम्पन्न व्यक्ति; अतः निरुक्त के नियमानुसार 'उदासी' शब्द का भाषागत अर्थ हुआ – उर्ध्वम् + आसीनः = उदासीनः; अर्थात्, जो आत्मसत्ता परमात्मा के अस्तित्व के संबंध में सचेतन होती है वह साधारण मनुष्य की अपेक्षा उन्नत मानव की श्रेणी पर उन्नीत होकर सत्यद्रष्टा एवं त्रिकालज्ञ हो जाती है। ऐसा वर्णित है, जब भगवान श्रीश्रीचन्द्राचार्य ने अवतार देहधारण किया तब उनके अप्राकृत शरीर पर भस्मादि विभूति लगी हुई थी! वे अतीव सुन्दर गौरवर्ण थे। एक कर्ण में अद्वैत ज्ञान के प्रतीक स्वरूप ज्योति विच्छुरणकारी स्वर्ण कुण्डल परिहित था। ऐसा दर्शन पाकर आस-पास के मनुष्यजन आश्चर्य मिश्रित भाव से एक-दूसरे से वार्तालाप करने लगे, ''जैसे साक्षात् शिवशम्भु प्रतीत हो रहे है।''

भाद्रशुक्ला नवमी तिथि, १४९४ ई॰ में पंजाब के तलवण्डी ग्राम में माता सुलक्षणी के पावन गर्भ से जब श्रीचन्द्रजी का जन्म हुआ तब वहाँ के विख्यात पण्डित हरिदयालु शर्माजी ने भविष्यवाणी की थी कि जैसे चन्द्रमा रात्रि के अंधकार को दूर कर देता है ठीक वैसे ही यह बालक भी हिन्दू जाति में व्याप्त अंधकार को नष्ट कर अपने दिव्य स्वभाव की शीतलता की महिमा से समस्तजनों के संताप दूर करेगा। बाल्यकाल से ही श्रीचन्द्रबाबा विरक्त स्वभाव युक्त थे। बहुधा वे अपनी इच्छानुसार घर छोड़कर जंगल की ओर चले जाते एवं वहाँ एकान्त में ध्यान में बैठकर मग्न हो जाते। ग्यारह वर्ष की उम्र में ही चन्द्रजी का उपनयन संस्कार हुआ एवं तभी से ही वे पण्डित हरिदयालुजी के सान्निध्य में रहकर विद्याध्ययन करते थे। बहुत कम समय में चन्द्रजी ने वेदो एवं शास्त्रों में पारदर्शीता अर्जन कर ली। वे गृहस्थ संसारादि में वीतराग थे अतः उनकी माता ने उन्हें गुरुगृह में रहकर गुरु आज्ञा पालन कर शिक्षा प्राप्ति के लिए कहा। तब वे गुरुजी से आज्ञा लेकर काश्मीर चले गये। उस समय केवल काश्मीर एवं काशी ही विद्या शिक्षा के उच्च केन्द्रस्थल थे। वहाँ त्यागी, सन्यासी, विद्वान निवास कर विद्या अर्जन करने के लिए सर्वप्रकारेण सुयोग सुविधा पाते थे। यहाँ गुरु-पण्डित पुरूषोत्तम कौलजी के समीप रहकर उनके पवित्र सान्निध्य लाभ से श्रीचन्द्रजी ने सम्पूर्ण ज्ञान आत्मसात् कर लिया। उस क्षेत्र में निवास के समय एक दिन उन्होंने सुना कि भारत प्रसिद्ध तपस्वी योगसिद्ध श्रीअविनाशी मुनिजी का वहाँ आगमन हुआ है एवं वे उपदेश प्रदान कर रहे हैं। यह सुनते ही श्रीचन्द्रजी उत्सुक हो उठे तथा शीघ्र ही श्रीअविनाशी महाराज के पास पहुँच गए। श्रीअविनाशी महाराज का प्रवचन सुनकर श्रीचन्द्रजी तब इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उन से चतुराश्रम (सन्यास) दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् उन्होंने सद्गुरु का निर्देश पाकर लोक कल्याण के कार्यों में निमग्न हो समग्र भारत परिभ्रमण हेतु सनातन धर्म का विजय शंख बजा दिया। सर्वयोगसिद्ध, सर्वशास्त्र पारंगत श्रीचन्द्रजी ने स्वयं अपने शिष्यों को यह अन्तिम उपदेश प्रदान किया था – उन्होंने कहा, ''महात्मागण, आपलोगों ने सनातन वैदिक घर्म का जो महानव्रत ग्रहण किया है प्राणप्रण से उस पवित्र धर्म की रक्षा करने की चेष्टा करिएगा। यही मेरा जीवन-दर्शन है।'' सत्य ही श्रीचन्द्राचार्यजी का जीवन-दर्शन अलौकिक अभिनव निर्मल सात्विक वृत्ति सम्पन्न था।

भगवान श्रीचन्द्र सर्वदा आकाशमार्ग से परिभ्रमण करते थे। वे अतुल योगैश्वर्य के अधिकारी थे। अनेक सिद्ध महापुरूषगण उनका दर्शन करने के लिए आते थे। इसके अतिरिक्त महाराणा प्रताप सिंह (उदयपूर), मुगल बादशाह हुमायूँ, जहाँगीर तथा अन्य राजा-वज़ीर उनके पवित्र दर्शनलाभ कर धन्य हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि बादशाह

जहाँगीर ने जब श्रीचन्द्रजी को दरबार में आमंत्रित किया तो उन्होंने उसके आग्रह को अस्वीकार कर दिया। इसके फलस्वरूप क्रोधान्वित बादशाह ने उन्हें बलप्रयोग द्वारा लाहौर ले जाना चाहा। इस पर श्रीचन्द्रजी ने नानक-चौक में जहाँगीर द्वारा भेजे गए फौज के अधिकारी से कहा कि ''बादशाह का हाथी हमारी लोई (कम्बल) ही नहीं उठा सकता तो हमें किस तरह उठाकर लाहौर ले जायेगा।'' ऐसे थे अत्यद्भुत अलौकिक शक्तिसम्पन्न महात्मा भगवान श्रीचन्द्रबाबा। उनकी जीवनी शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती।

भगवान श्रीचन्द्रजी ने कहा - ''इस माया के संसार से त्राण पाने के लिए, मुक्ति पाने के लिए जीवन में भक्ति और ज्ञान दोनों को साथ-साथ रखना होगा। 'उभाभयमेव पक्षाभयं यथा जे पक्षिनां गतिः। तथेव ज्ञानकर्ममयं प्राण्यते ब्रह्म शाश्वतम्'।।''

–अर्थात्, जैसे दो पंखों की सहायता से आकाश में स्वच्छन्दता से उड़ते हुए पक्षी अपने नीड़ में पहुँच ही जाते है, वैसे ही ज्ञान और कर्म (भक्तिरूपी सूक्ष्म मानसिक कर्म) के द्वारा मनुष्य ब्रह्म पर्यन्त गतिलाभ करने में सक्षम होता है। भगवान श्रीचन्द्रजी ने अपने शिष्यों से कहा, ''चेतो नगरी तारो गाम। अलख पुरूष का सिमरो नाम।'' – तुम अविद्या रूपी निद्रा में सो रहे मनुष्यों को जाग्रत करो, उठाओ, हिलाओ डुलाओ एवं पूछो कि तुम लोग कौन हो? क्यों अवस्थान कर रहे हो? कहाँ से आए हो? क्यों आए हो? उनलोगों हेतु क्या करणीय है एवं कहाँ जाना होगा; यह विषय उन्हें सत्य दर्शन के माध्यम से समझाना होगा। 'चेतो' शब्द का अर्थ है चेतना जाग्रत होना। संसार में कितना दुःख सहना पड़ता है मनुष्य को। अतः उस मायिक त्रिताप ज्वाला से दग्ध गाँव-गाँव, नगर-नगर, घरों-घरों में समस्त सन्तों को घुमना होगा एवं मनुष्यों को जाग्रत कर चेतना प्रदान करनी होगी। उनके अन्तःकरण में चेतना जाग्रत कर बताना होगा कि उस अलख पुरूष परमात्मा का नाम सदा-सर्वदा स्मरण करो अर्थात्, 'अलख पुरूष का सिमरो नाम'; परमात्मा के बिना जीव की गति नहीं है। वे अलख पुरूष ही हुए परमात्मा ईश्वर या भगवान। भगवान का नाम स्मरण कर दूसरों के चित्त को प्रसन्न कर, स्वयं शान्त होकर अन्यों को शान्ति का मार्ग दर्शन कर जीवनमुक्त रहकर अन्य मनुष्यों को जीवनमुक्ति का मार्ग दिखाना होगा। इस प्रकार माया-मोह द्वारा अज्ञानान्धकार से अवसन्न क्लेशाबद्ध मनुष्यों को अमृतरूपी आलोक का पथ प्रदर्शित कर उनको मुक्तिमार्ग दिखाना ही साधुओं का प्रकृत कर्म है।

श्रीभगवान के असंख्य अवतार हुए हैं एवं होंगे। भगवान के अवतार कभी-कभी मुख्य होते है फिर कभी-कभी गौण होते है, पुरूषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, लीलावतार फिर कहीं कहीं आवेश-अवतार के विषय में भी कहा गया है। जैसे भगवान परशुराम थे। उसी प्रकार भगवान शिवावतार के मध्य श्रीचन्द्राचार्यजी हुए एक विशिष्ट अवतार साक्षात् शंकर स्वरूप भगवान।

परवर्ती कल्प में भगवान श्रीचन्द्रजी ''स्वामी प्रणवानन्द'' रूप में पुनः अवतीर्ण हुए थे, यही भारतवर्ष के महात्माओं का अनुभव। भारत सेवाश्रम संघ के प्रतिष्ठाता स्वामी प्रणवानन्दजी साक्षात् मार्कण्डेय ऋषि के तेज (अंश) थे। ऐसा अनुभव कर उदात्त कंठ से कहा गया है कि - ''यदा यदा ही धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।''

(गीता ४-७-८)

–हिन्दी अनुवाद : मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख

मृत्यु चिन्ता साधक के लिए एक अमृतमय रसायन है। मृत्यु चिन्ता का ही परिणाम हुया, बुद्ध का बुद्धत्व, शंकर का शंकरत्व, चैतन्य का चैतन्यत्व। जो प्रति मुहूर्त्त हृदय में – शरीर के जीवन-यौवन की नश्वरता को जागृत रख सकता है; मृत्यु ही इस काया की अन्तिम परिणति है – इस बोध को हृदयंगम कर सकता है – जो व्यक्ति यह विचार कर सके कि यह शरीर किसी भी क्षण विनष्ट हो सकता है एवं जगत् के सभी प्रिय व्यक्तिओं या वस्तुओं से वियोग सम्भव है; उसके हृदय में इन्द्रियादि रिपुओं का आधिपत्य नहीं रहता है।

– आचार्य श्रीमत् स्वामी प्रणवानन्दजी